**ओ३म्**

**-आर्य समाज की अपने संन्यासी, विद्वानों व नेताओं से अपेक्षायें-**

**‘हमारे संन्यासी, नेता व विद्वान स्वामी दयानन्द से प्रेरणा ग्रहण करें’**

**लेखक: मनमोहन कुमार आर्य, देहरादून।**

आर्य समाज वैदिक आश्रम व्यवस्था को मानता है जिसमें चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास नाम से प्रसिद्ध हैं। हम यहां संन्यास आश्रम की चर्चा कर रहे हैं। संन्यास का मुख्य अर्थ है कि स्वयं को गृहस्थ के उत्तरदायित्वों से मुक्त करके स्वतन्त्र होकर ईश्वरोपासना, आत्मोन्नति व सद्धर्म का पालन करते हुए देश व समाज के लिए समर्पित हो जाना। ब्रह्मचर्य आश्रम में हम शरीर का निर्माण करते हैं, उसकी वृद्धि कर उसे गृहस्थ, वानप्रस्थ तथा संन्यास आश्रम की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए तैयार करते हैं जिसमें विद्यार्जन करना प्रमुख है। यहां यह भी प्रश्न उपस्थित होता है कि विद्या क्या है, किस उद्देश्य की पूर्ति के लिए विद्यार्जन किया जाता है तथा विद्या कैसी होनी चाहिये? यदि ब्रह्मचर्य आश्रम की उपेक्षा की गई या हो गई तो हमारे आगे के तीनों आश्रम बिगड़ जायेगें। अतः ब्रह्मचर्य पर ध्यान दिये जाने की आवष्यकता है। इसके लिए माता-पिता को अपनी सन्तानों को ऐसे विद्यालय या गुरूकुल में भेजना होता है जहां उसकी बुद्धि का पूर्ण विकास किया जाये। विद्या की परिभाषा करते हुए हम यह पाते हैं कि विद्या वह है जो मनुष्य को जीवन का उद्देष्य जनाये व उसे प्राप्त कराये। उद्देश्य क्या है, ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति को उसके वास्तविक स्वरूप में जानना। जो भी व्यक्ति जीवात्मा व ईश्वर के स्वरूप के साथ प्रकृति के स्वरूप को भी यथार्थ रूप में जानेगा तो वह पूर्ण विद्वान पुरूष होगा और यदि नहीं जानेगा तो हम उसे पूर्ण ज्ञानी व बुद्धिमान व्यक्ति नहीं कह सकते। आप कह सकते हैं कि जीवन जीने के लिए व्यक्ति का हिन्दी व अंग्रेजी भाषाओं को जानना, टाईपिंग व कम्प्यूटर को जानना व इन्हें चलाना, बी.ए., एम.ए., बी.एस.सी, एम.एस.सी, एम.बी.ए. आदि पढ़ा हुआ तथा डाक्टर, इंजीनियरिगं आदि उपाधियों से विभूषित होना चाहिये तभी वह सफल व्यक्ति माना जा सकता है। ऐसा करने पर उसके पास प्रचुर धन व अन्य साधन जिससे जीवन सुखी व सम्पन्न होता है, होगें। यदि ऐसा नहीं है तो जीवन तो फिर अभाव ग्रस्त होकर रोज-रोज की चिन्ताओं व कष्टों का भण्डार हो जायेगा।

यहां हमारा प्रश्न है कि वह जीवन भी क्या जीवन है जिसमें व्यक्ति को यही न पता हो कि वस्तुतः वह है कौन? उसका जन्म किस उद्देश्य से हुआ है? यह संसार कब, किसके द्वारा कि उद्देश्य से बना है? संसार को बनाने वाली उस सत्ता का स्वरूप कैसा है? प्रकृति, जो कि अनुभव से जड़ दिखाई देती है, की मूल अवस्था क्या है? और उससे यह सृष्टि बनकर कैसे अस्तित्व में आई है? हम यह स्वीकार करते हैं कि व्यक्ति प्रभूत धन कमायें, उसके पास जीवन के सभी आधुनिक साधन भी होने चाहिये परन्तु उसको यह भी याद रहना चाहिये कि साधन उसके जीवन के उद्देश्य की प्राप्ति के लिए हैं न कि वह साधनों के लिए है। आज कल जिस प्रकार से धन कमाया जा रहा है उससे मनुष्य के जीवन का प्रत्येक क्षण धनोपार्जन को ही समर्पित हो कर रह गया है। वह जीवन को सुखी बनाने के ही साधनों के लिए जीवन को व्यतीत करता दिखाई देता है। साधनों को ही उसने अपना साध्य बना रखा है। जबकि विचार व चिन्तन से यह विदित होता है कि हमारा साध्य अपना व ईश्वर का तथा प्रकृति के मूल व कार्यस्वरूप को यथार्थ रूप में जानना, अपने व्यवहार को अन्य प्राणधारियों के कल्याण के लिए कार्य करने सहित ईश्वर का साक्षात्कार करना एवं जीवन मुक्त अवस्था को होकर मोक्ष प्राप्त करना है। क्या हम ऐसा कर रहे हैं? हमें लगता है कि अपवादों को छोड़कर शायद ही ऐसा कोई करता हो। अतः ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का ज्ञान व ईश्वर-साक्षात्कार के लिए प्रयास करना मनुष्य जीवन के प्रमुख कर्तव्य हैं। इसके साथ मनुष्य अन्य सब विषय पढ़े, बड़ी-बड़ी उपाधियां प्राप्त करे, नौकरी या व्यवसाय करके प्रभूत धन अर्जित करे, अपनी आवश्यकतायें कम से कम रखे और आवश्यकता से अधिक धन का संग्रह न कर उसे लोकोपकार के कार्यों में व्यय आदि कर्तव्यों को करे। हमें ऐसा करना ही बुद्धिमत्ता प्रतीत होती है। हमें पता नहीं कि कोई हमारी इस बात से सहमत होगा या नहीं। इस प्रकार से ब्रह्मचर्य में सभी विद्याओं को प्राप्त कर धनोपार्जन में लगें और वैदिक कर्मों व कर्तव्यों को पूरा करते हुए जीवन व्यतीत करें तो किसी को कोई आपत्ति नहीं होगी और उसका जीवन उद्देश्य की पूर्ति में सफल हो सकता है। गृहस्थ जीवन में व्यक्ति को गृहस्थ के कर्तव्यों का व वानप्रस्थ आश्रम में इस आश्रम के कर्तव्यों का निर्वाह करना है। इसके बाद 75 वर्ष की अवस्था व उससे पूर्व अपने कर्तव्यों का निर्वाह करके वैराग्य होने पर संन्यास आश्रम में प्रवेश करे जिससे इस आश्रम में निहित उद्देश्य पूरे किये जा सकें और देश व समाज की उन्नति हो।

आज की परिस्थितियों में संन्यासी का मुख्यतम् कार्य, पं. लेखराम, पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, स्वामी श्रद्धानन्द और स्वामी दर्शनानन्द जी की तरह, ऐसे लोगों में वेद वा वैदिक शिक्षाओं का प्रचार करना है जो वैदिक धर्म से परिचित नहीं हैं। इसके लिए उसे प्रवचन व उपदेश का सहारा लेना है। गांवों व झुग्गी-झोपड़ियों में जाना होगा। लोगों से मिलकर उनके साथ बैठ कर बातचीत करनी होगी। उनकी समस्यायें सुननी होगीं। उनका समाधान बताना होगा। वेद, आर्य समाज व महर्षि दयानन्द के बारे में उन्हें बताना होगा। सत्यार्थ प्रकाश पुस्तक उन्हें देनी होगी। उसका उन्हें नियमित स्वाध्याय करने का वचन लेना होगा। उससे उन पर क्या प्रभाव होगा यह भी उनको बताना होगा। वह विधर्मियों के कुचक्र में न फंसे, यह भी उन्हें समझाना होगा। अपना पता, फोन नं. आदि उन्हें देना होगा कि यदि उनसे कोई अन्याय आदि करता है तो वह उस फोन नं. पर सूचित करें। आर्य समाज उनकी सहायता करेगा, यह विश्वास उन्हें दिलाना होगा। आर्यसमाज, अन्य मत-मतान्तरों व मजहबों में मुख्य अन्तर क्या है, यह भी बताना होगा। वैदिक धर्म की सर्वोपरि श्रेष्ठता का वर्णन भी करना व सुनाना होगा। ईश्वर व आत्मा के स्वरूप व इनके गुणों के बारे में भी उन्हें बताना होगा। ईश्वर, जीवात्मा व प्रकृति का जैसा वर्णन वेदों, वैदिक साहित्य व सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों में है, वैसा अन्य मतों, मजहबों के ग्रन्थों व पुस्तकों में नहीं है। अन्य मतों में पड़े हुए व्यक्ति अपने - मानव जीवन के सच्चे उद्देश्य व उसकी प्राप्ति के उपायों से अनभिज्ञ हैं। उन्हें जीवन का लक्ष्य सत्कर्म व मोक्ष की प्राप्ति यदि हो सकती है तो केवल व केवल वैदिक धर्म की शरण में आकर उसके नियम, उद्देश्य, सिद्धान्तों व मान्यताओं का पालन करके ही हो सकती है। इस पर तर्क व बुद्धिसंगत विचार प्रस्तुत करने होगें। इसके साथ कालेजों, स्कूलों, गुरूकुलों व सरकारी कार्यालयों में जाकर वहां वेद व वैदिक विचारधारा का महत्व प्रतिपादित कर उन्हें सत्यार्थप्रकाश व वैदिक साहित्य पढ़ने की प्रेरणा देनी चाहिये। यदि कोई संन्यासी ऐसा न कर अपने आश्रम में रहकर यज्ञ आदि कर व करवा तथा दान एकत्र करने में ही श्रम करता है, कार्यालय में बैठ कर या आर्यसमाज मन्दिर में रविवार व वार्षिकोत्सव आदि में प्रवचन करने को ही वेद प्रचार मानता है तो हम उनसे सहमत नहीं हैं। आर्यसमाज मन्दिर में प्रवचन देना अच्छी बात है, इसका कोई विरोध नहीं है, परन्तु यह तो ऐसे कमरे में प्रकाश करने के समान है, जहां पहले से ही उजाला व प्रकाश है। प्रकाश अन्धेरे स्थान में करने की आवश्यकता है। देश विदेश में घूमने, राजनीतिक बयानबाजी करने, बड़ी-बडी घोषणायें करने परन्तु पूर्व घोषणाओं की उपेक्षा करने व दान इकट्ठा करने की प्रवृत्ति संन्यासियों में नहीं होनी चाहिये। पत्र-पत्रिकाओं में अपनी फोटो व लेख छपाने का मोह भी संन्यासियों को छोड़ना चाहिये। देश विदेश की यात्रा करने वाले विद्वानों व संन्यासियों से हम कहना चाहते हैं कि वह स्वयं का आत्मालोचन करें और देखें कि कहीं वह आर्य समाज व आर्य जनता के प्रति अन्याय तो नहीं कर रहे हैं? आर्य समाज की प्रतिष्ठा व गरिमा को आघात तो नहीं हो रहा है? हमारा यह भी मानना है कि यदि काई विद्वान व संन्यासी किसी से कोई दान लेता है, तो उसे उस दानदाता की भावना के अनुसार जिस कार्य के लिये दान लिया या दिया गया है, उसे पूरा करने का उत्तरदायित्व निभाना चाहिये। उन्हें लोकैषणा व महत्वांकाक्षाओं से बचना चाहिये। संन्यासी तो वैरागी होता है। यदि वह अपने नाम से या परिवार आदि के नाम पर संस्थायें, आश्रम व न्यास बनाता है तो हम इसे संन्यास की मर्यादा के विपरीत समझते हैं। यह महर्षि दयानन्द द्वारा अपने जीवन, कार्यों, व्यवहार, उपदेश व विचारों से दिये गये उदाहरणों के विपरीत होने से अप्रशस्त कार्य है। उसे हर स्थिति में यह याद रखना चाहिये कि उसे अज्ञान, अन्धकार, अन्धविश्वास, पाखण्ड, गुरूडम, असत्य, अन्याय, अशिक्षा, अविद्या, शोषण व स्वार्थ की प्रवृति को मिटाना है। प्रत्येक विद्वान व संन्यासी को अपने व्यवहार से यह दिखाना है कि वह लोकैषणा व महत्वाकांक्षाओं से सर्वथा रहित है। यदि ऐसा नहीं है तो फिर भले ही वह संन्यासी कितना बड़ा, विख्यात, प्रभावशाली व्याख्यानदाता क्यों न हो, हमें लगता है कि वह संन्यास धर्म का पालन नहीं कर रहा है। वह सामान्य लोगों के समान ही है।

किसी भी संन्यासी, नेता व विद्वान को ऐसी कोई घोषणा नहीं करनी चाहिये जिसे वह पूरा न कर सकता हो। समाचार पत्रों में छा जाने की लोकैषणा की प्रवृत्ति से बचना चाहिये। यदि कोई किसी कार्यक्रम या आन्दोलन की घोषणा करे तो उससे पूछा जाना चाहिये कि क्या अतीत में की गई उसकी सभी घोषणायें क्रियान्वित हुईं और पूरी हो चुकी हैं? आजकल विदेशी व अन्य शक्तियां भी आर्यसमाज को कमजोर करना चाहती हैं और प्रलोभन देकर हमारे ही बीच के लोगों से अपना मनोरथ सिद्ध करवाती हैं। अतः हमें यह देखना है कि हममें से कोई किसी देशी या विदेशी, धार्मिक, सामाजिक व राजनैतिक संगठन के एजेण्ट के रूप में तो काम नहीं कर रहा है? इससे आर्य समाज का संगठन कमजोर होता है और हम मुख्य मुद्दों से हट कर अनावश्यक कार्यों यथा मुकदमें-बाजी आदि, में अपना धन व शक्ति को व्यय करते हैं। यही हमारे विरोधी संगठनों, सम्प्रदायों व कुछ राजनीतिक दलों का उद्देश्य हो सकता है। अतः सावधानी रखने की आवश्यकता है जिससे आर्यसमाज अपने उद्देश्य को स्मरण रख कर उसे पूरा कर सके। हम यह भी निवेदन करना चाहते हैं कि बहुत से संन्यासी एक आश्रम से दूसरे आश्रम में आते जाते रहते हैं परन्तु कभी उनके विचारों व प्रवचनों का सुनने का अवसर नहीं मिलता। कुछ में प्रवचन करने की योग्यता का भी अभाव देखा जाता है। हमें लगता है कि प्रत्येक आर्यसमाज के संन्यासी को प्रवचन करने का अभ्यास करना चाहिये। अभ्यास व प्रयत्न से क्या नहीं किया जा सकता? प्रवचन करना इतना कठिन व जटिल नहीं है। हां, स्वाध्याय, चिन्तन-मनन व अभ्यास के साथ आत्मिक शक्ति या बल की भी आवश्यकता है। इससे यह कमी दूर हो सकती है। हम आशा करते हैं कि सभी विद्वान, वानप्रस्थी व संन्यासी हमारी बात का सकारात्मक पक्ष ग्रहण करने का प्रयत्न करेगें। यह सभी बातें हम आर्यसमाज के हित को ध्यान में रखकर लिख रहे हैं। किसी भी विद्वान से हमारा कोई व्यक्तिगत राग-द्वेष नहीं है, अतः हम निवेदन करते हैं कि कोई इन शब्दों का बुरा न माने।

आईये, अब देखते हैं कि स्वामी दयानन्दजी ने संन्यास लेने के बाद क्या-क्या काम किये। उनका जीवन व दिनचर्या कैसी थी। सभी आर्य सदस्य व विद्वान जानते हैं कि महर्षि दयानन्द का प्रथम सर्वांगपूर्ण जीवन चरित, पूर्व एकाधिक संक्षिप्त जीवन चरितो को छोड़कर, पण्डित लेखराम जी के प्रयत्नों व पुरूषार्थ का परिणाम है। अन्य ऋषिभक्तों ने भी श्रद्धा व परिश्रमपूर्वक स्वामी दयानन्द जी के जीवन चरित लिखे हैं। पं. देवेन्द्र नाथ मुखोपाध्याय, स्वामी सत्यानन्द, हरविलास शारदा, मा. लक्ष्मण आर्य, रामविलास शारदा, डा. भवानीलाल भारतीय आदि प्रमुख जीवनीकार हैं। पत्र-व्यवहार से भी किसी व्यक्ति के कार्यों व विचारों का ज्ञान होता है। महर्षि दयानन्द के पत्र-व्यवहार पर पं. भगवददत्त जी तथा पं. युधिष्ठिर मीमांसक जी ने प्रशंसनीय कार्य किया है। इन जीवन चरितों से स्वामीजी के जीवन व कार्यों पर प्रकाश पड़ता है और हम जान पाते हैं कि उनका रहन-सहन व प्रचार-प्रणाली क्या थी। महर्षि दयानन्द जी ने पूर्ण वैराग्य होने के कारण अपनी युवावस्था में ही स्वामी पूर्णानन्द सरस्वती से संन्यास आश्रम की दीक्षा ली थी और स्वामी दयानन्द नाम ग्रहण किया था। इसके बाद वह सत्य की खोज, अध्ययन, योग, चिन्तन-मनन, देशाटन, संन्यासी व विद्वानों से शंका समाधान, पुस्तकालयों की खोज और वहां के प्राचीन ग्रन्थों का अध्ययन व उन पर विचार-चिन्तन आदि का कार्य करते रहे। प्रथम आजादी की लड़ाई सन् 1857 के ढ़ाई वर्ष बाद वह मथुरा नगरी में गुरू विरजानन्द सरस्वती की कुटिया में आर्ष व्याकरण के अध्ययन के लिए पहुंचें। लगभग 3 वर्षों में उन्होंने अपना अध्ययन समाप्त कर लिया और गुरू की आज्ञा व भावना के अनुसार वह वेदों के प्रचार व प्रसार में सक्रिय हुए। स्वामीजी नगरों के बीच निवास नहीं करते थे। उनका निवास नगर से कुछ दूर किसी बाग, नदियों के तट व बस्तियों से पर्याप्त दूर एकान्त स्थान में हुआ करता था। वह बहुत अधिक दिनों, महीनों व वर्षों तक एक स्थान पर नहीं रहते थे। जो व्यक्ति या आर्य पुरूष उन्हें आमंत्रित करते थे, वही उनके निवास की उनकी आवश्यकता व इच्छानुसार व्यवस्था करते थे। स्वामीजी अपने डेरे पर ही प्रवचन, शंका-समाधान व वार्तालाप करते थे। यदि नगर में उनके व्याख्यानों की व्यवस्था की जाती थी तो वह वहां जाते थे और सवारी वा वाहन से सायं व रात्रि के समय अपने डेरे पर लौट आते थे। पहले तो वह एक लंगोट बांध कर ही रहते थे परन्तु कोलकत्ता में ब्रह्म समाज के एक नेता श्री केशवचन्द्र सेन द्वारा उनको वस्त्र पहनने व भाषण में संस्कृत के स्थान पर आर्य भाषा हिन्दी का प्रयोग करने का परामर्श दिये जाने पर उन्होंने उनके दोनों सुझावों को स्वीकार कर लिया था। अब वह वस्त्र अर्थात् वैदिक आर्य परिधान धोती पहनने लगे थे और सिर में पगड़ी भी बांधते थे। भाषण में हिन्दी का प्रयोग होने लगा और जब सत्यार्थप्रकाश लिखने का समय आया तो उसके लिए उन्होंने हिन्दी को स्वीकार किया। यह एक क्रान्तिकारी निर्णय था। अपने व्यक्तिगत कार्यों के लिए धन संग्रह व उसका संचय व बैंक खाता आदि खोलने जैसे विषयों के बारे में तो उन्होंने कभी सोचा ही नहीं था। ब्लैकमनी व कालाधन क्या होता है, उसका उन्हें कोई ज्ञान नहीं था, इसलिए उसको छुपाने का तो प्रश्न ही नहीं था। पब्लिसिटी का तो उन्हें ज्ञान ही नहीं था। लोकैषणा से यहां तक दूर थे कि किसी को कैमरे में अपना चित्र भी उतारने देना पसन्द नहीं करते थे। परन्तु अब समय बदल चुका है। अब अर्थ शुचिता के सिद्धान्त में समय के साथ परिवर्तन हो गया है। यह बात सभी मतों के कुछ अनुयायियों व प्रचारको पर समान रूप से लागू होती है परन्तु कहीं-कहीं दाल में कुछ काला होने की सम्भावना से इनकार भी नहीं किया जा सकता। मीडिया व आम लोगों में धर्म प्रचारकों के ठाट-बाट को देखकर इसकी चर्चा आम व्याक्तियों द्वारा सामान्यतः की जाती है।

महान संन्यासी स्वामी दयानन्द सरस्वती एक स्थान पर कुछ दिन रहकर प्रचार करते थे और उसके बाद अन्य निकटवर्ती व दूरस्थ स्थान पर प्रस्थान कर जाते थे। आर्यसमाज की स्थापना के बाद यदि कहीं आर्यसमाज की स्थापना का अवसर होता था तो वह भी ऋषि दयानन्द जी के कर कमलों द्वारा हो जाया करती थी। आर्ष संस्कृत व्याकरण एवं आर्ष ग्रन्थों के पठन-पाठन पर उनका बहुत जोर रहा। उन्होंने कई पाठशालायें खोली परन्तु किन्हीं कारणों से वह सफलतापूर्वक चल न सकी जिस कारण उनको बन्द करना पड़ा। सन् 1875 में आर्य समाज की स्थापना के समय से उन्होंने ग्रन्थ लेखन भी आरम्भ कर दिया था। यद्यपि इससे पूर्व भी उन्होंने आदि सन्ध्या व भागवत् खण्डन पर लघु पुस्तकें लिखी थी परन्तु सत्यार्थ प्रकाश के लेखन के बाद हम देखते हैं कि लेखन कार्य में वह अपने देह के अवसान पर्यन्त संलग्न रहे और इतना होने पर भी वेद भाष्य आदि का कार्य पूर्णतः सम्पादित न हो सका। उनका ऋग्वेद का भाष्य अधूरा रह गया और अथर्ववेद तथा सामवेद का भाष्य वह कर ही नहीं सके। यदि वह सामवेद का आध्यात्मिक व भक्ति रस से पूर्ण भाष्य भी कर जाते तो यह अद्वितीय होता। इस कमी को अन्य आर्य विद्वानों ने काफी कुछ पूरा कर दिया है। डा. रामनाथ वेदालंकार और इनके गुरू पं. विश्वनाथ विद्यालंकार वेदोपाध्याय जी के सामवेद-भाष्य हमारे पास हैं और अन्य अनेक विद्वानों के भी सामवेद-भाष्य हैं जो हमें सामवेद की महत्ता का दिग्दर्षन कराते हैं। इसी प्रकार से अथर्ववेद भाष्य व ऋग्वेद के अवषिष्ट भाग का भाष्य भी हमें सुलभ है। हम जीवन भर स्वामी दयानन्द जी में लोभ, स्वार्थ, अर्थ संग्रह, अपना कोई आश्रम बनाने, देश विदेश में अनावश्यक बार बार घूमने, आने-जाने आदि व निरर्थक कार्यों में समय का दुरूपयोग करने जैसी कोई गतिविधि नहीं देखते। अपनी पब्लिसिटी व पत्र-पत्रिकाओं में छाये रहने की प्रवृत्ति से वह कोसों दूर थे। वह अपने एक-एक क्षण का उपयोग मानवता की भलाई के कामों में करते थे। हमारे सभी विद्वान संन्यासियों को स्वामी दयानन्द के जीवन से प्रेरणा लेकर अपने जीवनों को पूर्णतः व अधिकांशतः उनके जैसा ही बनाने का प्रयत्न करना चाहिये और अपने जीवन की कमियों को दूर करना चाहिये। वही संन्यासी आर्य संन्यासी कहला सकते हैं जिनका जीवन स्वामी दयानन्द के अनुरूप आदर्शों से भरा हो अन्यथा यही कहा जा सकता है उनमें संन्यास की उच्च मर्यादायें व गरिमा का अभाव है। यह सभी बातें आर्यसमाज के विद्वानों व प्रचारकों पर भी पूर्ण रूप से लागू होती हैं।

हम आर्य जगत के विद्वानों से प्रार्थना करते हैं कि वह आर्य समाज के हित में इस विषय में अपने विचारों व लेखनी से आर्य बन्धुओं का समय-समय पर मार्गदर्शन करते रहें। आर्यसमाज के हित और वर्तमान स्थिति को देखकर हमारे मन में इस लेख को लिखने का विचार आया। आशा है कि आर्यसमाज के मननशील अनुयायी इस पर संजीदगी से विचार करेंगे। इति।

**-मनमोहनकुमार आर्य**

**पताः 196 चुक्खूवाला-2**

**देहरादून-248001**

**फोनः 09412985121**